INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF INDIA

ISSN 2454-8707 VOLUME-II, ISSUE-IX, MAY-2017

नलिन कुमार मंडल

(पी–एच.डी. शोधार्थी)

अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग

महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

Email: mandal.nalin9@gmail.com

Mo. 08956917760

शोध विषय

भारतीय राष्ट्र राज्य में नवगठित राज्यों कि स्थिति (झारखंड के विषेष संदर्भ में)

प्रस्तावना :

राष्ट्र और राष्ट्रीयता की परिभाषा भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में आज भी अस्पष्ट है और जब, किसी लोकतंत्र में राष्ट्र की परिभाषा ही स्पष्ट न हो उसके नागरिकों के समाने, राष्ट्रीयता का बोध न हो उस जनतंत्र के जन–मानस में तो इससे खतरनाक बात और कुछ हो ही नही सकती । आजाद भारत के नागरिकों को सभी राष्ट्र का बोध उसके शासकों ने, उसके शासकिय तंत्र ने नहीं होने दिया । कहीं बिहार, कहीं उत्तर प्रदेष, कहीं राजस्थान, कहीं असम, कहीं नागालैंड – और सबमें विभाजन और भेद की एक रेखा भी । छोटे छोटे राज्य अपनी पहचान को बड़ा करके देखने लगे । उनकी समस्याएं बडी थी । उनके लिए राष्ट्र गौण था । उत्तरांचल, झारखंड, छत्तीसगढ तो बन ही गया, बोडोलैंड की मांग अभी सामने है और जाने कितने दिनों तक हमें इस समस्या का सामना करना पड़ेगा । फलतः इन राज्यों के नागरिको में जातीय – संस्कृति के प्रति जिम्मेदारी और प्रतिबध्दता हाषिए पर चली गई । आजाद भारत के संविधान ने आने नागरिकों को कागज पर तो एक समझा लेकिन व्यवहार में पिछड़ो, निम्न–वर्गो, आदिवासीयों और दलितो को – अपना नागरकिता में शामिल हीं नही किया । आज भी लोकतांत्रिक जनतांत्रिक भारत में आदिवासीयों को नागरिकता प्राप्त नही है । लोकतंत्र की सुख–सुविधा, अधिकार और स्वतंत्रता सिर्फ संपन्न – वर्गो की मिलकियत बनकर रह गई । परिणाम है विद्रोह । अलग–अलग राज्य की मांग । सरकार से अविश्वास । लोकतंत्र पर प्रष्नचिन्ह । अपने ही राष्ट्र मे नागरिक असुरक्षित । उसका स्वप्न टुट गया । रष्ट्रीयता के मायके उसके लिए प्रष्नों से घिर गये । जातीयता की विषवेली पर अगर गहराई से हमारे लोकतंत्र के कर्ता धर्ता विचार करते तो आज देष का नक्षा कुछ और होता ।

सच्चाई तो यह है कि आजाद, लोकतांत्रिक भारत ने अपने संविधान की रुपरेखा बताते वक्त जिस उदारता, विषालता और सहिष्णुता का परिचय दिया था उसे उसके सत्ताधारकों ने धीरे–धीरे भुला दिया । भारत में संविधान का स्वरुप तो धर्मनिरपेक्ष रखा लेकिन उसने अपनें समाज के स्वरुप की कल्पना धर्मनिरपेक्ष नहीं

की और न ही अपनी समाज–व्यवस्था को धर्मनिरपेक्ष का कभी कोई प्रयास ही किया । लोकतांत्रिक – व्यवस्था का यह सबसे बड़ा अंतर्विरोध था ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पष्चात् प्रजातांत्रिक सरकार स्थापित की गई । इसका मुख्य उद्देश्य प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता और सामाजिक न्याय के सिध्दान्तों और नियमों पर राष्ट्र – निर्माण करना था देष के सभी भाग–राष्ट्र निर्माण मे निष्पक्ष व्यवहार चाहते थे। परन्तु विकास के लिए सभी भाग आपस में प्रतिस्पर्धा करने लगे । किसी भी काम को आषा से कम होना उनमें भ्रान्ति फैलाता था और उसके फलस्वरुप ही क्षेत्रीय राजनीती का जन्म हुआ ।

भाषा के आधार पर प्रदेषों के पुनर्गठन ने क्षेत्रीय भाषा के आधार पर प्रदोषों के पुनर्गठन ने क्षेत्रीय राजनीति के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । 28 प्रदेषों को पुनर्गठित किया गया और केन्द्रीय प्रषासनिक राज्य क्षेत्रों सहित इन्हें घटाकर 14 कर दिया गया । इसके बाद फिर से नए प्रदेष बनाए गए । उदाहरण के लिए मुम्बई को गुजरात और महाराष्ट्र, पंजाब को पंजाब और हरियाणा में बाँट दिया गया । परन्तु इन प्रदेषों को पूरी तरह भाशा के आधार पर ही नहीं बनाया गया था ।

अन्य बहुत से कारकों जैसे कि नृजातीय तथा आर्थिक विचारएँ (नागलैण्ड, मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा, हरियाणा और पंजाब) : भाषा (महाराष्ट्र और गुजरात) तथा ऐतिहासिक और राजनीतिक कारण (उत्तर प्रदेष और राजस्थान) : भाषा और सामाजिक भिन्नता (तमिलनाडु, केरल, मैसूर, बंगाल और उड़ीसा) ने भारतीय संघ की संरचना में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभायी है ।

इन सब विचारों के अतिरिक्त भाषा प्रदेषों के पुनर्गठन में महत्वपूर्ण कारक रही है । क्षेत्रीयतावाद के संदर्भ में यह ऐसी महत्वपूर्ण शक्ति बन गई है जिससे भाषाई क्षेत्रीयतावाद ने भारतीय राजनीति में अपना स्थान बना लिया है ।

आजाद भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु भाषायी आधार पर राज्यों के गठन का विरोध करते रहे । लेकिन मद्रास से आंध्र प्रदेष को अलग करने को लेकर सामाजिक कार्यकर्ता पोट्टी श्रीरामालू की 58 दिन के आमरण अनषन के बाद मौत से वह तेलगू भाषी राज्य बनाने पर मजबूर हो गए ।

भाषायी आधार पर राज्यों को पुनर्गठित करने के लिए 22 दिसंबर 1953 को न्यायाधीष फजल अली की अध्यक्षता में पहले राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन हुआ ।

1955 में राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट आने के बाद 1956 में 14 राज्य और 6 केंद्रषासित राज्य बने । 1960–66 में पुनर्गठन दूसरा दौर चला और कई नए राज्य वजूद में आए ।

1950 के दषक में पंजाबी सूबा आंदोलन शुरु हुआ । इस मांग पर नतीजा आने में 16 साल लग गए । सितंबर 1966 में इंदिरा गांधी की अगुवाई वाली केंद्र सरकार ने मांग स्वीकार की और पंजाब रिऑर्गेनाइजेषन एक्ट के तहत पंजाब तीन हिस्सों मे बँट गया । पंजाब के दक्षिणी हिस्से जहाँ हरियाणवी बोली जाती है , वह हरियाणा बन, पहाड़ी बोली वाला इलाका बना हिमाचल प्रदेष और चंडीगढ़ को छोड़कर शेष क्षेत्र ने नए पंजाब को आकार दिया । बॉम्बे स्टेट में मराठी और गुजराती भाषायी आंदोलन की शुरुआत हुई, जिनके तहत अलग राज्य बनाने की मांग उठी । गुजराती स्टेट के लिए महागुजरात मूवमेंट की अगुवाई इंदूलाल याज्ञनिक ने की, जबकि संयुक्त महाराष्ट्र समिति ने राजधानी के रुप में मुंबई के साथ अलग मराठी राज्य की मांग की । 1 मई 1960 को बॉम्बे स्टेट का बंटवारा हो गया । फलस्वरुप दो नये राज्य गुजरात एवं महाराष्ट्र का अभ्युदय हुआ ।

21 जनवरी 1972 को असम बंटा, तो युनाइटेड खासी हिल्स, जैंतिया हिल्स और गारो हिल्स को मिलाकर मेघालय बनाया गया । पूर्ण राज्य का दर्जा मिलने से पहले 1970 में मेघालय को सेमीऑटोनोमस

स्टेटस मिल गया था । मणिपुर 1956 में केंद्र शासित प्रदेष बना, लेकिन बाद में 1972 में इसे पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया । 1971 की भारत–पाक जं में पाकिस्तान की ओर से त्रिपुरा के कुछ हिस्सों पर हमला किया गया । इस जंग के बाद सरकार ने पूर्वोत्तर का पुनर्गठन किया, ताकि अपनी अंतरराष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा प्रभावी बना सके । जो तीन नए राज्य बने, उनमें त्रिपुरा भी शामिल था ।

हम भारतीयों के बारे में एक बड़ी ही अच्छी बात यह है कि हम उम्मीद का दामन कभी नहीं छोड़ते । हमें हमेषा लगता है कि जल्दी ही कोई मसीहा आएगा या ऐसा कुछ महान हो जाएगा, जो हमें सारी समस्याओं से मुक्त कर देगा । हम मे से कई लोगों को लगता है कि आम आदमी की तकलीफों को खत्म करने का ताजा रामबाण समाधान है – एक नए राज्य का निर्माण । अचानक इतने सारे नए राज्यों की मांग क्यों ? ऐसा लगात है कि नए राज्यों की मांग देष के आर्थिक रुप से पिछड़े इलाकों से आ रही है । सीधा कारण यह है : लोग खराब प्रषासन से आजिज आ गए हैं और उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि जवाब किससे मांगे या दोष किसे दें । उन्हें एक नए राज्य का विचार फिर चाहे यह गलत ही क्यों न हो, आजमाकर देखने जैस लगता है ।

सन 2000 में एन.डी.ए. की तत्कालीन केन्द्र सरकार के तीन हिन्दी भाषी प्रदेषों–मध्यप्रदेष, बिहार व उत्तर प्रदेष को विभाजित कर क्रमषः छत्तीसगढ, झारखंड राज्यों का गठन किया था । नये राज्यों के गठन के पीछे तर्क यह था कि छोटे राज्य तेजी से प्रगति करते हैं । और वहाँ का शासन, जनकांक्षाओ को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करता है । इन क्षेत्रों के निवासियों की यह षिकायत भी थी कि संबंधित राज्य सरकारों द्वारा उनकी अपेक्षा की जा रही है ।झारखंड और उत्तराखंड में नये राज्य की मांग को लेकर जबरदस्त जनांदोलन भी चल रहा था यद्यपि छत्तीसगढ में अलग राज्य की मांग को जनता का तुलनात्मक रुप से कम समर्थन प्राप्त था । इन राज्यों के गठन को ग्यारह साल बीत चुके है । इस अवधी में क्या उन लक्ष्यों की पूर्ति हुई है जिसके लिए इन राज्यों का गठन किया गया था ?

परिकल्पना :

- भारतीय राष्ट्र राज्य मे नवगठित राज्यों की स्थिति अपने विकास लक्ष्यों की और अग्रसर है।
- छोटे राज्य तेजी से प्रगति करते है और वहा का शासन जनकांक्षाओं को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करता है

उद्देश्य :

1. नए राज्यों की माँग के कारणों की वस्तु स्थिति क्या है इनकी दशा एंम दिशा क्या है ज्ञात करना।
2. नए बनाए गए राज्यों की वस्तु स्थिति क्या है ज्ञात करना।
3. नए राज्यों के प्रादुभाव से देश में एकता अखण्डता एवं राजनैतिक एकता अस्थिरता का माहौल तो नही, ज्ञात करना।
4. नवगठित राज्यों ने अपने विकास लक्ष्यों की पूर्ति हेतु जिन कारकों पर ध्यान केन्द्रित किया है इसका विष्लेषणात्मक अध्ययन करना । इसी दृष्टि से अध्ययन करना मेरे शोधा की परिकल्पना है।
5. देश के विभिन्न हिस्सों से उठ रहे नए राज्यों की मांग क्षेत्रीय असंतुलन एवं आर्थिक विषमता के कारण है इसकी पुष्टि करना।
6. नए बनाए गए राज्यों की तुलनात्मक अध्ययन करना विकास के दृष्टिकोण से।

महत्व :

इन राज्यों के गठन के पष्चात देष के विभिन्न क्षेत्रों मे नए राज्यों की माँग जारों पर है । ऐसे में यह शोध अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है । अलग–अलग पृथक राज्य बन जाने मात्र से क्या विकास संभव हो जाती है । जिसे विकास के लिए अलग राज्य बनाये जाते हैं क्या पूर्णतया उस लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है । ऐसे मे इस शोध विषय की महत्ता अपरिहार्य है । इस शोध विषय के अध्ययन से यह स्पष्ट हो सकेगा की जिन जनआंकाक्षाओं की पूर्ति हेतु नए राज्यों की गठन होती है उसमें पूर्णतया या अंषतः सफलता मिलती है । इस आधार पर यह अध्ययन महत्वपूर्ण है ।

प्रविधि :

इनमें मात्रात्मक प्रविधि व वर्णात्मक विधी, गुणात्मक विधि के साथ–साथ लाइब्रेरी वर्क और संबंधित व्यक्तियों का साक्षात्कार भी लिया जाएगा।

मेरे शोध प्रबंध के आकड़े एवं तथ्य संकलन का स्त्रोत होगा।

1) प्राथमिक स्त्रोत

2) द्वितीयक स्त्रोत

प्रस्तुत शोध पी–एच.डी. के शोध प्रबंध के लिए चुना गया है जिसका शीर्षक **भारतीय राष्ट्र राज्य में नवगठित राज्यों कि स्थिति (झारखंड के विषेश संदर्भ में)** है। यह शोध भारत का रूर क्षेत्र झारखंड राज्य से संबंधित है जो कि भारत का 28वां राज्य है।

वस्तुतः इस शोध कार्य का आशय हाल के वर्षों में छोटे राज्यों और राजनीतिक विकेंद्रीकरण के लिए दबाब मौजूद रहा है इसलिए इसके कारणों की समीक्षा करना और निर्णय प्रक्रिया में इसके गतिशील संबंधों की समीक्षा करना । उपयोगी होगा क्योकि यह राज्यों के पुनर्गठन और उनकी सीमाओं में फेरबदल से सीधे–सीधे जुड़ा हुआ है।

2- उपराष्ट्रीयता विमर्षः अस्मिताओं के संदर्भ में :–1- राष्ट्र राज्य की अवधारणा और भारतीयता का सवाल :–

राज्य के साथ जब राष्ट्र जुड़ जाता है तो राष्ट्र राज्य को संचालित करने वाले अविभाजन और उसकी वैधता का बड़ा प्रभावशाली मिश्रण तैयार होता है । राष्ट्र–राज्य के विचार से भारतीय समाज का साक्षात्कार उन्नीसवी सदी के दूसरे हिस्से में हुआ ।यह ख्याल राष्ट्रवाद की पश्चिमी विचारधारा की हवाओ पर सवार होकर हमारे पास आया ।

नंदी सारी दुनिया में आधुनिक राज्य, राष्ट्रवाद और आधुनिकता के आलोचक के रुप में मशहूर है । रवींद्रनाथ के राष्ट्रीयता संबंधी विचारो के जरिए पारंपारिक भारतीय राज्य की खोई हुई स्मृति वर्तमान में ले आते हैं ।

सैध्दांतिक दृष्टिकोन मे राष्ट्रवाद एक मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विचार है । राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए एकता का आधार प्राप्त होना आवष्यक है । भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, समान ऐतिहासिक धरोहर, भौगोलिक एकता तथा आर्थिक हित आदि ऐसे कई तत्व है जिनकी सहाय्यता से राष्ट्र का विचार उत्पन्न होता है । और अन्त में राष्ट्र की भावना उत्पन्न होती है । एक बार इस भावना के उत्पन्न हो जाने के बाद फिर ये निरन्तर बलवती हो जाती है और राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त करता है और उस बनाए रख सकता है । भारत में विभिन्नता के अनेक कारण रहे है, फिर भी धार्मिक एवं ऐतिहासिक कारणों से राष्ट्रीयता की भावना प्रारंभ से ही बनी रही है ।

समय–समय पर उस भावना को जागृत करने की सामग्री मिलती रही है । मुगल काल में महाराणा प्रताप तथा छत्रपति षिवाजी के समय राष्ट्रीय भावना की जागृति के अवसर उत्पन्न हुए । उससे राष्ट्रीय विचारधारा में तेजी आई । ब्रिटिष शासको के विरुध्द नव–जागरण के अवसर फिर से उत्पन्न हुए तथा 1857 में फिरंगियो को भगाने का प्रयत्न उसी राष्ट्रवाद की भावना का कारण बना । इसके बाद धर्म तथा समाज सुधारक आन्दोलनों ने उसे निरन्तर बल प्रदान किया तथा यह विचारधारा बल प्राप्त करती गई ।

3- संसाधन पर नियंत्रण का सवाल और राज्यों के लिए आंदोलन :–

नये राज्यों के लिए आंदोलन वस्तुतः उस क्षेत्र में उपेक्षितं जन समुदायो द्वारा विकास के लिए जन आंदोलन था । नये राज्यों के गठन के पीछे तर्क यह था कि छोटे राज्य तेजी से प्रगति करते है और वहा का शासन जनकांक्षाओं को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करता है । उन क्षेत्रों मे निवासियों की यह षिकायत भी थी कि संबंधित राज्य सरकारों द्वारा उनकी उपेक्षा की जा रही है । झारखंड और उत्तराखंड में नये राज्य कि माँग को लेकर जबरदस्त जनांदोलन भी चल रहा था । यद्यपि छत्तीसगढ़ में अलग राज्य की माँग को जनता का तुलनात्मक रुप से कम समर्थन प्राप्त था ।

जैसा कि विदित है वर्तमान में विभिन्न राज्यों की माँग को लेकर जनआंदोलन लगातार चल रहा है कही बोडोलैन्ड की माँग, कही विदर्भ की माँग, तो वहीं तेलंगाना पृथक राज्य की माँग उठ रही है, लगातार उन क्षेत्रों में जनआंदोलन पृथक राज्य की माँग उठ रही है, लगातार उन क्षेत्रों मे जनआंदोलन पृथक राज्य की माँग को लेकर हो रहा है ।

अ) झारखंड राज्य का आंदोलन : मूलवासियों के अधिकार का सवाल :

आदिवासी हमारे देष के महत्वपूर्ण नागरिक है । उनका जीवन प्रायः जंगलो पर आधारित है । हजारों लाखों वर्षों से वे अरण्यो में अपना जीवन यापन कर रहे है । हमारा संविधान वचन बध्द है कि आदिवासी अपनी परम्परागत विषिष्ट पहचान को बनाए रखते हुए ही राष्ट्र की विकास धारा में इच्छा नुसार जुड़ सकते है । जहाँ तक पर्यावरण के संदर्भ में आदिवासियों के जीवन से जुड़े मुद्दों का प्रश्न है, सरकार का प्रयास है कि उस दिशा में त्वरित ऐसे निर्णय लिए जाये ताकि उनकी प्राकृतिक संस्कृति पर कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े ।

इस संदर्भ में हरिष्चंद्र व्यास का यह कथन महत्वपूर्ण है कि ''सरकार राष्ट्रीय नीति में प्राकृतिक संसाधनो का अध्याधिक दोहन न करके पर्यावरण शुध्दि एवं आदिम जाति के विकास की परम्परा को सर्वोपरि रखने की प्राथमिकता की घोषणा करती आई है । ताकि वे अपनी अस्मिता जातीय अरण्य संस्कृति एवं वन्य जीवों के बीच रहकर अपनी परम्परागत शैली में पर्यावरण संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया में अहम भूमिका पहले की भांति अदा करते रहे'' । विकास परियोजनाओ का विकास उनकी इच्छा के प्रतिकूल थोपने जैसे न होकर उनकी परम्परा में रुकावटे लानेवाले तथ्यों का पहले निराकरण वांछित है । ताकि वे मूलभूत परिवेष में अपनें क्रियाकलापों को निष्पादित करते रहें ।

शोध-विषय : भारतीय राष्ट्र राज्य में नवगठित राज्यों कि स्थिति (झारखंड के विषेष संदर्भ में)

प्रस्तुत शोध पी–एच.डी. के शोध प्रबंध के लिए चुना गया है जिसका शीर्षक **भारतीय राष्ट्र राज्य में नवगठित राज्यों कि स्थिति (झारखंड के विषेश संदर्भ में)** है। यह शोध भारत का रूर क्षेत्र झारखंड राज्य से संबंधित है जो कि भारत का 28वां राज्य है।

वस्तुतः इस शोध कार्य का आशय हाल के वर्षों में छोटे राज्यों और राजनीतिक विकेंद्रीकरण के लिए दबाब मौजूद रहा है इसलिए इसके कारणों की समीक्षा करना और निर्णय प्रक्रिया में इसके गतिशील संबंधों की समीक्षा करना । उपयोगी होगा क्योकि यह राज्यों के पुनर्गठन और उनकी सीमाओं में फेरबदल से सीधे–सीधे जुड़ा हुआ है।

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF INDIA
ISSN 2454-8707 VOLUME-II, ISSUE-IX, MAY-2017

उपसंहार

सन् 1953 से 1966 के बीच भाषाई राज्यों की संरचना का दौर पूरा हो जाने के कुछ ही वर्ष बाद देश के आंतरिक भूगोल को नये सिरे से रचने की माँग फिर शुरू हो गयी। हालाँकि कुछ माँगों का स्वर जातीयतावादी भी था, पर इस बार उसके पीछे भाषा का तर्क न हो कर मुख्य तौर पर बेहतर प्रशासन और विकास की दलील थी। इसके मुताबिक़ कहा जा रहा था कि अगर राज्य आकार में छोटे होंगे तो इस लक्ष्य को आसानी से वेंधा जा सकता है। राज्य पुनर्गठन की अभी तक चली प्रक्रिया के तहत राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक– भाषाई समरसता तो कमोबेश हासिल कर ली गयी थी, पर क्षेत्रीय संगठन के अन्य मानकों को अनदेखा किया गया था। प्रदेशों के आकार, विकास के स्तर, प्रशासनिक सुविधा, सामाजिक समरूपता और राजनीतिक तर्क पर ध्यान न के बराबर दिया गया था।

साठ के दशक में उत्तर प्रदेश की आबादी साढ़े सात करोड़ थी और दुनिया की सबसे बड़ी प्रशासनिक इकाई के रूप में वह एक बेहद अप्रबंधनीय और बेडौल आकार का राज्य था। उसका पहाड़ी इलाक़ा लगातार विकास की कमी की ओर ध्यान खींचता रहता था। इसी तरह मध्य प्रदेश चार ऐतिहासिक रूप से अलग – अलग क़िस्म के क्षेत्रों से गठित किया गया था। बिहार और मध्य प्रदेश के आदिवासी इलाक़ों में अपने अलग राज्य की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ मौजूद थीं। आंध्र प्रदेश बना कर तेलुगुभाषियों की माँग तो पूरी हो गयी थी, पर यह राज्य एक हद तक विकसित तटीय इलाक़े और तेलंगाना जैसे बेहद पिछड़े क्षेत्र के जोड़ से बना था। तेलंगाना की शिकायत थी कि उसकी लगातार उपेक्षा हो रही है। देखते – देखते सत्तर और अस्सी के दशक में छोटे–छोटे कई राज्यों की दावेदारियाँ सामने आ गयीं। पश्चिम बंगाल के उत्तरी इलाक़े में रहने वाले गोरखाओं ने गोरखालैण्ड का परचम बुलंद कर दिया, पश्चिम बंगाल और असम के हिस्सों को मिला कर बृहत्तर कूच बिहार की माँग की जाने लगी। महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में उपेक्षा का तर्क देकर अलग प्रांत के लिए आंदोलन होने लगा। उत्तर प्रदेश को तो चार भागों में बाँटने की तजवीज़ की जाने लगी : पूर्वांचल, बुंदेलखण्ड और हरित प्रदेश और बचा हुआ मध्य उत्तर प्रदेश। राजस्थान के रेतीले इलाक़ों से मरु प्रदेश बनाने की चर्चा होने लगी। कर्नाटक के कुर्ग क्षेत्र में कोडागु की सुगबुगाहट सुनायी दी। बिहार में अलग मिथिलांचल और अलग भोजपुर के लिए गोलबंदी की कोशिशें शुरू हो गयीं।

दुर्भाग्यपूर्ण तो यह है कि हताशाजनक परिस्थितियों व पूर्वग्रहों में फंसे हम यह भूल जाते हैं कि नए राज्यों के गठन जैसे छद्म समाधान से कितना नुकसान होता है। क्योंकि समस्याओं से घिरे राज्य को विभाजित करने से ऐसे दो राज्य हो जाते हैं जहां वही समस्याएं होती हैं। स्थानीय नेता नए राज्य को लेकर चाहे कितने ही सुंदर सपने दिखाए, इस विचार में कई खामियां हैं। पहली तो यह कि छोटे राज्यों का केंद्र में कोई प्रभाव नहीं होता। यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा कि त्रिपुरा के मुख्यमंत्री की बजाय उ.प्र. के मुख्यमंत्री की दिल्ली में ज्यादा सुनी जाती है। आप छोटे राज्य बन जाइए और अचानक आप पाएंगे कि किसी को आपकी परवाह ही नहीं है।

दूसरी खामी यह है कि इससे पृथकतावादी, लगभग राष्ट्र–विरोधी भावनाएं जन्म लेती हैं, जो देश के लिए नुकसानदायक हैं। ऐसी खबरें हैं कि तेलंगाना में एक वर्ग के लोगों से बाहर जाने को कहा जा रहा है। यदि असम या पश्चिम बंगाल में नए राज्य बने तो हो सकता है वहां खूनखराबा हो। पीढ़ियों से साथ रह रहे लोग रातोंरात प्रतिद्वंद्वी हो जाएंगे। तीसरी आशंका यह है कि हो सकता है निवेशक नए राज्यों से दूर ही रहें, खासतौर पर उन राज्यों से जिनका निर्माण अस्थिरता के बीच हुआ हो। इसका मतलब काम के अवसरों की कमी और नए राज्य के लिए पहले से खराब स्थिति। चौथी दिक्कत यह है कि इससे हमारे भीतरी पूर्वग्रहों की पुष्टि ही होती है। आज दुनिया हमारी ओर देख रही है कि हम परिपक्वता दिखाकर अपनी समस्याएं सुलझाएं। दुसरी ओर हम हैं कि आपसी मतभेद और एक–दूसरे से नफरत करने के कारण खोज निकालने में लगे हैं। आंध्रपद्रेश अपनेआप में एक अद्‌भुत राज्य है। इसमें कोई दोमत नहीं कि अन्य

किसी राज्य की तरह इसकी अपनी समस्याएं हैं। इसके टुकड़े करके भारत के कई हिस्सों को अस्थिरता में धकेलना और हमारे पूर्वग्रहों को जायज ठहराना कोई बुध्दिमानी भरा समाधान नहीं है।

नए राज्य बनाने में कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन इसके पीछे तार्किक कारण होने चाहिए और इसकी प्रक्रिया शांतिपूर्ण और मुद्दों पर आधारित होनी चाहिए। राज्यों के गठन के पीछे पूर्वग्रहों की बजाय प्रशासनिक कारण होने चाहिए।

एक अनुमान के अनुसार नयी सदी में पहले दशक के अंत तक उत्तर प्रदेश की आबादी 20 करोड़ से थोड़ी ही कम होगी; अर्थात् वह ब्राज़ील, रूस और पाकिस्तान से भी बड़ी प्रशासनिक इकाई है। इसी तरह महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश फ्रांस और ब्रिटेन से भी बड़े हैं। दूसरी तरफ सिक्किम में केवल साठ लाख लोग रहते हैं। मिज़ोरम और अरुणाचल प्रदेश की आबादी क्रमशः 11 और 13 लाख है। योजना आयोग के साथ लम्बे अरसे तक जुड़े रहे सार्वजनिक वित्त के विशेषज्ञ एन.जे. कुरियन की मान्यता है कि देश में इस समय अत्यंत विषम आकारों वाले 28 राज्य हैं और इस संख्या को बढ़ा कर 50 तक किया जा सकता है। हर बड़े राज्य को दो या तीन टुकड़ों में बाँटा जाना ताकि हर राज्य की आबादी एक से चार करोड़ के बीच रह जाए।

झाड़खण्ड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखण्ड के 2004–05 और 2008–09 के बीच हुए विकास पर अगर निगाह डाली जाए तो पहली नज़र में पलड़ा छोटे राज्यों के पक्ष में झुका हुआ नज़र आता है। उत्तराखण्ड को पहाड़ी राज्य होने के कारण केंद्र सरकार ने हिमाचल प्रदेश और कश्मीर जैसी टैक्स– रियायतें दे रखी हैं। इसी वजह से इस प्रदेश ने बड़े पैमाने पर औद्योगिक निवेश आकर्षित किया है। झाड़खण्ड और छत्तीसगढ़ खनिजों (कोयला और लौह अयस्क) की दृष्टि से काफ़ी समृध्द राज्य हैं। बिहार व मध्य प्रदेश के हिस्से के रूप में उनका यह आर्थिक लाभ पटना और भोपाल चला जाता था। अलग राज्य बनने के बाद यह फ़ायदा वे स्वयं उठा रहे हैं। लेकिन झाड़खण्ड और छत्तीसगढ़ की बढ़ी हुई विकास–दर का कारण केवल खनिज–सम्पत्ति ही नहीं है। कारखाना – निर्माण क्षेत्र में उन्हें असाधारण कामयाबी मिली है और उन्होंने राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा और तमिलनाडु से बेहतर परिणाम हासिल किये हैं।

क्या पूर्वांचल, हरित प्रदेश, भोजपुर, मरु प्रदेश और बुंदेलखण्ड की रचना होने पर उन्हें भी इसी तरह के आर्थिक उछाल का लाभ मिलेगा? विशेषज्ञों की राय में इसकी कोई गारंटी नहीं है। इनमें न तो कोई पहाड़ी इलाक़ा है, और न ही इन क्षेत्रों में खनिज सम्पदा है। केवल गोरखालैण्ड के समर्थक दावा कर सकते हैं कि उनका क्षेत्र दार्जिलिंग की वजह से पर्यटन की आमदनी वाला है और वहाँ चाय के बागान हैं। गोरखालैण्ड वनोपजों से भी सम्पन्न है।

ज़ाहिर है कि औद्योगिक मोर्चे पर छोटे राज्यों ने बड़े राज्यों के मुक़ाबले कहीं बेहतर प्रगति करके दिखाई है। पर प्रशासन, क़ानून और व्यवस्था और राजनीतिक संस्कृति के मामले में इन्हें छोटे होने के कारण कोई विशेष लाभ नहीं दिखाई दे रहा है। छत्तीसगढ़ और झाड़खण्ड के आदिवासी इलाक़े माओवादी हिंसा से बुरी तरह पीड़ित है जिसके कारण राज्यों के अन्य हिस्सों में हो रहे औद्योगिक विकास का उनकी जनजातियों को फ़ायदा नहीं हो पा रहा है। इसके मुक़ाबले अगर आंध्र प्रदेश जैसे विशाल राज्य द्वारा माओवादी समस्या से मुक़ाबला करने का रिकॉर्ड देखा जाए तो वह अधिक बेहतर लगता है।

राजनीतिक दृष्टि से छत्तीसगढ़ में स्थिरता है, पर झाड़खण्ड बार–बार सरकारें बदलने के कारण अस्थिरता का नमूना बन चुका है। छत्तीसगढ़ और झाड़खण्ड दोनों ही माओवादी विद्रोह का केंद्र बने हुए हैं। उत्तराखण्ड भी कमोबेश स्थिर है। इससे लगता है कि किसी राज्य का छोटा होना अपने–आप में बेहतर राजनीतिक संस्कृति की कोई गारंटी नहीं है। राज्य का आकार कैसा भी हो, उसे सक्षम राजनीतिक नेतृत्व मिलना एक ऐसी पूर्व–शर्त है जिसका कोई विकल्प नहीं हो सकता।

देश के संघीय ढाँचे और केंद्र–राज्य संबंधों की समस्या पर ग़ौर करने वाले विशेषज्ञों में छोटे राज्यों की माँग के बारे में एकराय है कि भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद उठी छोटे राज्यों की माँग के पीछे राजनीतिक और आर्थिक प्रबंधन की समस्या है। तेलंगना के उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। 1956 में तेलंगाना के नेताओं और आंध्र प्रदेश के राजनीतिक नेतृत्व के बीच एक समझदारी बनी थी कि इस पिछड़े हुए इलाक़े के विकास पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। इसी वायदे के मुताबिक़ इस क्षेत्र के लिए बजट में अलग से प्रावधान किया जाता था, पर 1973 के बाद ऐसा नहीं किया गया जिसके परिणामस्वरूप परस्पर अविश्वास बढ़ता चला गया। जिन राज्यों में वित्तीय बँटवारा नीचे तक करने पर ध्यान दिया गया है, वहाँ अलग राज्यों की माँगें थोड़ी – बहुत सुगबुगाहट के बाद ख़ामोश हो जाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- मिश्र कृष्णकान्त, राजनीतिक सिध्दांत और शासन, ग्रंथ शिल्पी : 2001
- गुप्ता विश्वप्रकाश, गुप्ता मोहिनी, भारत में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन, राधा पब्लिकेषन्स स – 2006
- देशपांडे स.ह. हिन्दुत्व से राष्ट्रीयता की ओर, जीवन प्रभात प्रकाषन–1999
- गुप्ता विश्व प्रकाष, गुप्ता मोहिनी, श्ाारतीय राजनीति विकास और विष्लेषण, राधा पब्लिकेशन्स – 2001
- मोदी नृपेन्द्र प्रसाद, गांधी दृष्टि, मानक पब्लिकेषन्स प्रा. लि. – 2007
- पाण्डेय तेजस्कर, पाण्डेय ओजस्कर, समाजकार्य भारत बुक सेंटर, लखनऊ, संपादक – डॉ. उपेन्द्र
- गुप्ता रमणिका, सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे
- छिल्लर मंजुलता, भारतीय सामाजिक समस्याएँ
- सोषालिस्ट सेक्युलर भारत, फरवरी–2011] भोपाल वर्ष – 10] अंक 2
- मीणा रमेश चंद, 2013, आदिवासी दस्तक, अलख प्रकाशन, जयपुर।
- वर्मा रूपचंद 1997, 2003, भारतीय जनजातियां, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
- गुप्ता रमणिका, 2008, आदिवासी कौन, रमणिका फाउंडेशन, राधाकृष्णन Pvt. N.D.-02
- कुमार विनोद, 2005, आदिवासी संघर्षगाथा, प्रकाशन संस्थान, N.D.-02
- दुबे अभय कुमार, 2013, समाज विज्ञान विश्वकोष, राजकमल प्रकाशन,. N.D.-02